बच्चे और उनका आत्मविश्वास

फ़ैयाज़ अहमद

इस लेख में कुछ ऐसे अनुभवशील विवरण प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे समझ बनती है कि यदि बच्चों को उनके रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े चुनौतीपूर्ण शिक्षण कार्य दिए जाएँ और इन्हें हल करने के दौरान उनसे उत्साहवर्धक बातचीत की जाए तो बच्चे उस काम को करने में दिलचस्पी लेते हैं और उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। सं.

मुझे बच्चों के साथ घुलना-मिलना और वक़्त बिताना अच्छा लगता है। लेकिन लॉकडाउन के कारण बच्चों के साथ मिलने-जुलने का सिलसिला रुक-सा गया था। लगभग 500 दिनों के बाद स्कूल खुले और इसी बीच मुझे भी एक स्कूल में बच्चों से मिलने-जुलने का मौक़ा मिला। आज लगातार बारिश हो रही थी। सड़कों पर पानी भरा था। आने-जाने में काफ़ी मुश्किल हो रही थी। ऐसे में यह सवाल बार-बार मन में आ रहा था कि क्या ऐसी बारिश में बच्चे स्कूल आएँगे? लेकिन मन में यह विश्वास भी था कि इतने दिनों बाद स्कूल खुले हैं, बच्चे ज़रूर आएँगे। इसी विश्वास और उत्साह के साथ हम चंडीगढ़ के बाहरी हिस्से के एक स्कूल में पहुँचे। वहाँ आठवीं और नौवीं की कक्षा चल रही थीं। हम कुछ देर के लिए वहीं रुक गए। हमारे आने की ख़बर स्कूल को हो गई थी। बच्चे हमें देखकर थोड़े घबराए हुए थे। उन्हें लग रहा था कि हम लोग वहाँ निरीक्षण के लिए आए हैं। कक्षा में गणित की एक कहानी पर गतिविधि चल रही थी। 8-10 वाक्यों की इस कहानी में ढेर सारे पात्रों के साथ कई संक्रियाएँ भी शामिल थीं। बच्चे व्यक्तिगत रूप से हल करने की कोशिश में लगे थे। बच्चों के चेहरों का रंग उड़ा हुआ था। गणित का दबाव उनके चेहरों पर साफ़ झलक रहा था। वे अनमने ढंग से गतिविधि कर रहे थे। इसे करने में उनकी रुचि बिलकुल भी नहीं थी। यह कहा जा सकता है कि गतिविधि करने में उनकी भागीदारी तो दिख रही थी लेकिन आत्मविश्वास की कमी भी साफ़ झलक रही थी।

कहानी का शीर्षक था 'मेला'। इसमें अलग-अलग उम्र के 6 दोस्त थे और वे एक साथ मेला देखने गए थे। सभी कुछ रुपए लेकर गए थे और मेले में ख़रीददारी भी की। इसपर आधारित कुछ सवाल पूछे गए थे, जैसे– सभी बच्चों की अलग-अलग उम्र बताइए, सभी दोस्तों के पास कुल कितने रुपए थे, मेले से लौटने के बाद कितने रुपए बचे, अमर के पास इमरान से कितने रुपए कम थे, आदि। एक सवाल बच्चों की उम्र पता लगाने पर आधारित था। दूसरा सवाल मेले में ख़र्च किए गए रुपयों पर आधारित था। फिर उनसे थोड़ा हटकर सवाल पूछा गया, जैसे– एक झूले की गोलाई 44 मीटर है। वह एक मिनट में 88 मीटर घूमता है। बताइए, उस झूले को 8 बार घूमने में कितने मिनट का समय लगेगा? सवाल देखकर बच्चे ख़ामोश हो गए। उन्हें कहा गया कि वे समूह बनाएँ और अपने-अपने समूह में बात करके उत्तर निकालें। काफ़ी समय हो गया लेकिन एक भी समूह उत्तर तक पहुँचने में सफल नहीं हो

पाया। क्या पूछा गया है, और क्या निकालना है, यह भी वे नहीं समझ पा रहे थे। ऐसा लगा मानो उनका आत्मविश्वास पूरी तरह से ध्वस्त हो गया हो। स्थिति को देखते हुए और आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए हमने उन्हें एक नया टास्क दिया। इस टास्क को 4-4 बच्चों के समूह में हल करना था। बैठने की जगह तो ऐसी नहीं थी कि समूह बनाए जा सकें, फिर भी बच्चों ने ख़ुद को समूह में बदल लिया। टास्क था, 'मारुति (कक्षा के एक बच्चे का नाम) के पास अभी 257 सेब हैं लेकिन उसे 427 सेब चाहिए। उसे क्या करना होगा?' बच्चे सोचने लगे। कुछ बच्चों की आवाज़ें साफ़ सुनाई दे रही थीं कि जोड़ेंगे या माइनस करेंगे, नहीं-नहीं जोड़ेंगे और माइनस भी करेंगे। सभी बच्चे अपने-अपने समूह में अलग-अलग तर्क दे रहे थे। एक समूह के बच्चे सही उत्तर तक पहुँच ही गए। मैंने उनसे पूछा कि आपने यह उत्तर कैसे निकाला? जवाब देने में उस समूह के सभी बच्चे फँस गए। लेकिन एक बच्चा कामयाब हो गया और उसका उत्तर था– 170 सेब। हमने उससे कहा कि आपने उत्तर कैसे निकाला, बोर्ड पर आकर बताइए। वह आगे आया और समझाने की कोशिश करने लगा। उसने संक्रिया को हल कर लिया और 427 में से 257 घटाकर सही उत्तर 170 निकाल लिया। लेकिन जैसे ही उससे पूछा गया कि आपने घटाव क्यों किया? सवाल से तो ऐसा लग रहा था कि सेब की संख्या बढ़ेगी और जब कोई चीज़ बढ़ती है तो जोड़ते हैं घटाते नहीं। फिर आपने घटाया क्यों? इसका उत्तर उसके पास नहीं था। उत्तर कैसे निकाला यह बताने में वह असफल रहा। मौक़ा देखते हुए अब हमने एक नया टास्क दिया।

"आप बर्थडे पार्टी मनाते हैं?" मैंने पूछा।

सभी बच्चे एक साथ चिल्लाए, "हाँ!"

"आप अपने बर्थडे पर किसे बुलाते हैं?"

"दोस्तों को!"

"ऐसा मानिए, आपको अभी बर्थडे पार्टी करनी है, तो आप कितने दोस्तों को बुलाएँगे?"

"सोचना पड़ेगा!"

"आप अपने दोस्तों को क्या खिलाना चाहेंगे? यानी आप पार्टी के मेन्यू में क्या-क्या रखेंगे? हम सब मिलकर उसकी एक लिस्ट बनाते हैं, सभी चीज़ों की क़ीमत के साथ..."

"केक 180 रुपए का आएगा। अगर हम केक के 10 टुकड़े करेंगे तो हर टुकड़े की क़ीमत कितनी होगी?"

सभी समूह में शोर हो रहा था। बच्चे अन्दाज़ा लगाकर बताने लगे। उसी शोर में एक बच्चे ने कहा, "18 रुपए।"

"और क्या-क्या रखेंगे आप अपने मेन्यू में?"

"समोसा, क़ीमत 10 रुपए।"

"कोल्डड्रिंक, क़ीमत 20 रुपए।"

"बहुत बढ़िया। मान लीजिए कि आपके मम्मी-पापा ने पार्टी करने के लिए आपको 3000 रुपए दिए हैं। आप सभी अपने-अपने समूह में,

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

बच्चों के साथ मेन्यू बनाकर सबके साथ साझा कीजिए।" बच्चे बड़े उत्साह के साथ मेन्यू बनाने में जुट गए। यह टास्क उन्हें परिचित लगा। कुछ ही देर में एक साथ कई हाथ उठे। सभी को अपने मेन्यू साझा करने की जल्दी थी। पहले समूह ने बताया : 10 दोस्तों को बुलाएँगे और प्रत्येक को एक-एक टुकड़ा केक खिलाएँगे। इस तरह कुल 180 रुपए लगेंगे। फिर सभी को एक-एक समोसा, यानी कुल 100 रुपए। सभी को कोल्ड ड्रिंक मतलब 200 रुपए। यानी हम कुल 480 रुपए ख़र्च करेंगे।"

"और बाक़ी रुपयों का क्या करेंगे?" मैंने ज़ोर देते हुए पूछा।

"मम्मी-पापा को वापस कर देंगे!"

दूसरे समूह से एक लड़की ने अपनी प्लानिंग साझा की : 20 दोस्तों को बुलाएँगे और प्रत्येक को आधा टुकड़ा केक खिलाएँगे। इस तरह कुल 180 रुपए में ही काम चल जाएगा। फिर सभी को समोसा शेयर करके खाने के लिए कहेंगे। सब अपने दोस्त हैं इसलिए सब मान भी जाएँगे। आधा-आधा समोसा, यानी कुल 100 रुपए। सभी दोस्तों को कोल्ड ड्रिंक भी शेयर करके पीने के लिए कहेंगे। एक बोतल में 2 व्यक्ति। मतलब 200 रुपए। कुल ख़र्च होंगे– 480 रुपए।"

"अरे वाह! आपने पहले समूह के बराबर ही रुपए ख़र्च किए जबकि आप पहले समूह से दो गुने दोस्तों को बुलाएँगे।" मैंने इस समूह से भी वही सवाल दोहराया, "बाक़ी पैसे का क्या करेंगे?"

"बचे हुए रुपयों में से आधे मम्मी-पापा को देंगे और आधे हम रख लेंगे!" यह बात इस बच्ची ने इतने आत्मविश्वास के साथ कही

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कि सभी ठहाके लगाकर हँस पड़े। टास्क पर बातचीत करने से बच्चे उसे आसानी से समझ पाए। उनका आत्मविश्वास दोगुना हो गया था। पढ़ने और हिसाब लगाने में उन्हें दिक़्क़त ज़रूर हो रही थी लेकिन बातचीत करके उन्होंने टास्क को समझ लिया था।

मैंने इससे जुड़ा एक और टास्क दे दिया : इस टास्क को करने के लिए आप सभी अपने मम्मी-पापा से पूछकर अपना मेन्यू बनाएँगे, शर्त सिर्फ़ इतनी है कि एक रुपया भी नहीं बचना चाहिए, पूरे 3000 रुपए ख़र्च करने हैं।" टास्क नया ज़रूर था लेकिन घबराहट का अंशमात्र भी उनके चेहरे पर नज़र नहीं आ रहा था। उनके चेहरों की चमक बता रही थी कि वे जाते ही न केवल मेन्यू बनाएँगे बल्कि घर वालों को भी इस पूरी प्रक्रिया में शामिल कर लेंगे।

तभी स्कूल की घण्टी बज गई। बच्चे अपनी जगह पर बैठे रहे। उन्हें घर जाने की बिलकुल जल्दी नहीं थी। यह बात तो साफ़ थी कि बच्चों से अगर ढेर सारी अर्थपूर्ण बातचीत की जाए और उनकी रोज़ाना की ज़िन्दगी से जोड़ते हुए टास्क लिए जाएँ तो वे अवधारणाओं को समझ पाते हैं, सीख पाते हैं और यह सीखना उनके आत्मविश्वास को भी बढ़ता है। इससे वे पढ़ने का मज़ा भी लेने लगते हैं और बड़े-बड़े सवालों को भी हल करने की चुनौतियों को बड़े उत्साह के साथ स्वीकारते हैं।

फ़ैयाज़ अहमद ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएचडी की है। इनकी साहित्य में रुचि है। पत्रिकाओं में कहानियाँ व लेख लिखते रहते हैं। तेरह वर्षों से ग़ैर-सरकारी संस्था 'प्रथम एजुकेशन फ़ाउण्डेशन' में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : faiyaz@pratham.org